On the Allegations of "Granth-Chaurya"

against Swami Karpatri Ji

A Response to Kushagra Aniket

1. Introduction

In recent weeks, Kushagra Aniket (@KushagraAniket) has levelled serious allegations of "ग्रन्थ-चौर्य" (intellectual appropriation / plagiarism) against Swami Karpatri Ji Maharaj. These charges appear in a series of articles and posts that form part of a larger project of refutation directed at Swami Karpatri Ji's positions on various traditional subjects.

The present essay collects and organises the principal arguments advanced in response to these allegations. It demonstrates that the charge of granth-chaurya is not the result of an honest scholarly oversight. Rather, it constitutes a deliberate narrative constructed to cast doubt upon the integrity of a major traditionalist figure, thereby enabling a broader claim against traditional scholarship itself.

2. The Nature of the Charge: Not an Honest Error

One might charitably assume that Kushagra simply overlooked the prefaces of the various volumes of *Sanatan Dharmalok* and therefore failed to notice the close connection between Swami Karpatri Ji and Pandit Dinanath Shastri. That assumption does not hold.

From the very outset, Kushagra advances the suggestion that Swami Karpatri Ji may have been intellectually dishonest and may have appropriated the works of other authors, presenting them as his own. He then expands this suggestion into a much broader claim: that such intellectual theft is not confined to Swami Karpatri Ji alone, but is practised by traditionalists in general, and has been practised historically in order to strip other Varnas of credit for their contributions.

This larger narrative is the real objective. The specific charge against Swami Karpatri Ji serves as the necessary first step. Without first casting doubt on the integrity of a major traditionalist figure, the wider accusation against the tradition itself cannot be sustained.

3. The Broader Narrative

After the earlier allegations against Swami Karpatri Ji, Kushagra proceeds to the following charge:

> *"जिन वर्गों में जन्म लेकर ऋषियों ने वेद-मंत्रों का साक्षात्कार किया, पुराणों का प्रवचन किया, और तपश्चर्या से प्रतिष्ठा अर्जित की, उन वर्गों से उनके अपने मनीषी छीनकर ये उनकी उपलब्धि को अभिजात वर्गों के खाते में लिख देना चाहते हैं।"*

He carries the fiction further by asserting that Swami Karpatri Ji and other traditionalists even fabricate and misquote scriptural material:

"इस प्रयास में पूर्वपक्षी शास्त्र-वाक्यों का विहिंसन करने से भी नहीं चूकते हैं, जैसे कल्पित श्लोक को पुराण के नाम से उद्धृत करना, शास्त्र-वचनों को बीच से काटकर उनका अर्थ पलट देना, अपने विरुद्ध जाने वाले प्रबल प्रमाणों को छिपा लेना, और शास्त्रों के शब्दों से वह कहलाने का प्रयत्न करना जो वे कहते ही नहीं।"

This is an especially grave set of accusations. It alleges the fabrication of verses, the false attribution of those verses to the Purāṇas, the selective quotation of scriptures, the concealment of contradictory evidence, and the deliberate misrepresentation of scriptural meaning. These are not minor scholarly disagreements. They amount to a charge of systematic intellectual fraud.

Kushagra continues:

"इस प्रकल्प में वे उन महात्माओं के जीवन-चरित को विस्मृत कराने और उनकी सामाजिक अस्मिता को मिटाने से भी नहीं चूकते।"

"चाहे शबरी हो अथवा लोमहर्षण सूत, करपात्री जी ने इतिहास-पुराण में जिस ज्ञानी, सच्चरित्र अथवा भक्त पर दृष्टिपात किया, उसे एक-एक कर ब्राह्मण घोषित करते गए।"

The unwholesome theme is now clear. According to this narrative, Brahmins systematically appropriate the works and achievements of other Varnas and present them as Brahminical. The charge could not have been sustained without first sowing seeds of doubt about Swami Karpatri Ji himself. By presenting him as an example of intellectual appropriation, the larger claim against traditional scholarship is made to appear plausible.

4. The Withheld Prefaces and the Connection with Karpatri-Mandal

It is for this reason that one must conclude that Kushagra Aniket deliberately withheld the prefaces of Pandit Dinanath Shastri's works. Those prefaces establish Shastri Ji's direct connection both with Swami Karpatri Ji and with "Karpatri-Mandal". Their omission is not an oversight. It forms part of a calculated strategy designed to mislead readers and to keep the preferred narrative intact.

The very works of Pandit Dinanath Shastri that are cited in the allegations contain, in their prefaces and other sections, explicit statements establishing that the granth *Sanatan Dharmaloka* was composed under the guidance of Swami Karpatri Ji. On multiple occasions Pandit Dinanath Shastri records that he received the Āśīrvād of Swami Karpatri Ji to continue the work.

5. Pandit Dinanath Shastri's Own Tribute

A particularly decisive piece of evidence is the signed tribute written by Pandit Dinanath Shastri Ji himself, in which he praises Swami Karpatri Ji precisely for authoring *Chaturvarnya-Samskriti-Vimarsha*. The relevant passage reads:

"श्री स्वामी करपात्री जी जो उच्चकोटि के विद्वान तथा वैदिक साहित्य में अप्रतिहत-प्रतिभा वाले व्यक्ति हैं, वेद और स्मृतियों में कहाँ क्या लिखा है और किन स्थलों पर लोग प्रहार कर रहे हैं उसका क्या समाधान पूर्व-विद्वानों ने किया है और क्या किया जा सकता है इस पर अपने स्वतन्त्र समय में विचार करते हैं। उन्होंने इस समस्त शंकाओं के लिए 'चातुर्वर्ण्य-संस्कृति-विमर्श' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। उनके मन में वर्णव्यवस्था जन्म से ही होती है कर्म से नहीं, कर्म तो उन योनियों में उत्पन्न होने वाले के लिये उत्कर्षाधायक हैं। स्वामी जी ने वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में शास्त्रीयमत का विशद विवेचन किया है और प्रत्येक विवेचक के लिये मार्ग-प्रशस्त किया है। जो वर्णव्यवस्था का विनाश करने के लिये कटिबद्ध हैं

उनके शिर में पीड़ा उत्पन्न करके नया मार्ग निकालने के लिये बाध्य कर दिया है। हम उनके गुणों की चर्चा करते हैं, जिन गुणों के आधार पर भारतवर्ष का ही नहीं किन्तु वाराणसी का महान् विद्वान भी उनके चरणों के निकट बैठकर अपने को धन्य मानता है और उनकी शास्त्रमयी स्वैरकथा सुनकर कृतकृत्य होता है।''

It is absurd to insist that Swami Karpatri Ji appropriated Pandit Shastri Ji's work in *Chaturvarnya-Samskriti-Vimarsha* when Shastri Ji himself is publicly promoting that very book. The entire claim collapses into something that can be justified only to oneself; no independent reader will find it convincing.

Screenshots of the tribute:



श्रीहरिः

करपात्री : एक अध्ययन

लेखक
कृष्णप्रसाद शर्मा

प्रकाशक
धर्मसंघ प्रकाशन, मेरठ।

'वर्तमान समय में स्वयं को सबसे अधिक बुद्धिमान मानने वाले जो लोग हिन्दू धर्म, संस्कृति, सभ्यता, हिन्दू जाति, परम्परा को गलत बतलाने के लिये तैयार होते हैं उनको ललकारने वाला यदि कोई विश्व में महापुरुष है तो वह हैं श्री स्वामी करपात्री जी महाराज। उनका व्यक्तित्व बहुमुखी है। वे एक साथ सर्वश्रेष्ठ वक्ता, लेखक, देशभक्त, धर्मोद्धारक और उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ भी हैं। हिन्दू धर्म, संस्कृति, सभ्यता, परम्परा, देश, जाति और गोमाता की रक्षा के लिये उन्होंने अपना पूरा जीवन ही लगा रखा है।"

—अनन्त श्री विभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य श्री स्वामी निरंजन देव तीर्थ जी महाराज (पूर्वाम्नाय) गोवर्धनमठ, जगन्नाथपुरी, उड़ीसा।

× × × ×

"स्वामी जी सरस्वती के वरदपुत्र हैं, धर्माचार्य हैं, भारतीय संस्कृति के महान ज्ञाता और व्याख्याता हैं। उनके कतिपय विचारों से मतभेद करने वाले भी उनके प्रति श्रद्धा से नत हैं। गोवंश की हत्या पर पूर्ण प्रतिबन्ध के लिये स्वामी जी के प्रयत्न सराहनीय हैं।"

—अटल बिहारी बाजपेयी,
विदेशमन्त्री, भारत सरकार, नई-दिल्ली।

× × ×

"श्री स्वामी करपात्री जी जो उच्चकोटि के विद्वान तथा वैदिक साहित्य में अप्रतिहत-प्रतिभा वाले व्यक्ति हैं, वेद और स्मृतियों में कहां क्या लिखा है और किन स्थलों पर लोग प्रहार कर रहे हैं उसका क्या समाधान पूर्व-विद्वानों ने किया है और क्या किया जा सकता है इस पर अपने स्वतन्त्र समय में विचार करते हैं। उन्होंने इस समस्त शंकाओं के लिए 'चातुर्वर्ण्य-संस्कृति-विमर्श' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। उनके मन में वर्णव्यवस्था जन्म से ही होती है कर्म से नहीं, कर्म तो उन योनियों में उत्पन्न होने वाले के लिये उत्कर्षाधायक है। स्वामी जी ने वर्ण-व्यवस्था के सम्बन्ध में शास्त्रीयमत का विशद विवेचन किया है और प्रत्येक विवेचक के लिये मार्ग-प्रशस्त किया है। जो वर्णव्यवस्था का विनाश करने के लिये कटिबद्ध हैं उनके शिर में पीड़ा उत्पन्न करके नया मार्ग निकालने के लिये बाध्य कर दिया है। हम उनके गुणों की चर्चा करते हैं, जिन गुणों के आधार पर भारतवर्ष का ही नहीं किन्तु वाराणसी का महान् विद्वान भी उनके चरणों के निकट बैठकर अपने को धन्य मानता है और उनकी शास्त्रमयी स्वैरकथा सुनकर कृतकृत्य होता है।

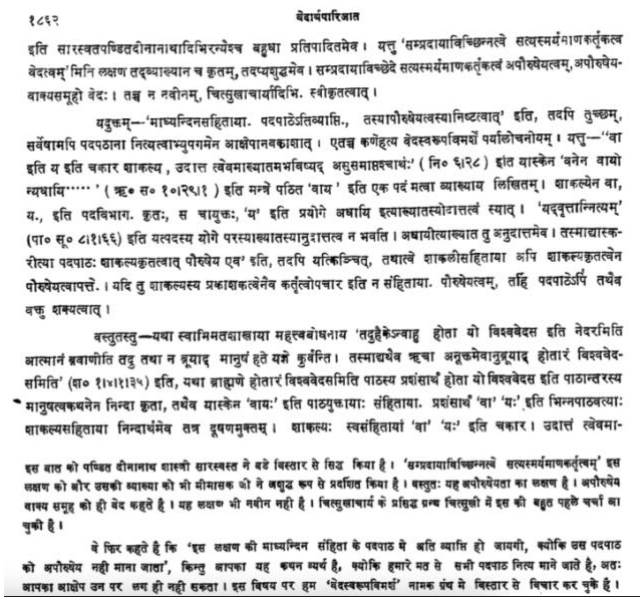
—पं० दीनानाथ शास्त्री 'सारस्वत'
प्रधान सम्पादक 'सिद्धान्त' काशी।

× × ×

6. The Reference in Vedarth Parijat

When confronted with evidence of connection and credit, the goalposts were shifted. It was then claimed that even if credit appears in *Vedarth Parijat*, its absence in *Chaturvarnya-Samskriti-Vimarsha* still constitutes granth-chaurya.

A direct reference from *Vedarth Parijat* was placed on record. With this single reference alone, the claim that Swami Karpatri Ji never mentioned Pandit Dinanath Shastri stands emphatically refuted. The assertion that "दीनानाथ शास्त्री को श्रेय देना तो दूर करपात्री जी ने कहीं उनका नामोल्लेख भी नहीं किया है" was thereby exposed as false.



१८६२ वेदार्थपारिजात

इति सारस्वतपण्डितदीनानाथादिभिरन्यैश्च बहुधा प्रतिपादितमेव। यत्तु 'सम्प्रदायाविच्छिन्नत्वे सत्यस्मर्यमाणकर्तृकत्व वेदत्वम्' मिति लक्षण तद्व्याख्यान च कृतम्, तदप्यशुद्धमेव। सम्प्रदायाविच्छेदे सत्यस्मर्यमाणकर्तृकत्वं अपौरुषेयत्वम्, अपौरुषेय-वाक्यसमूहो वेदः। तच्च न नवीनम्, चित्सुखाचार्यादिभि. स्वीकृतत्वात्।

यदुक्तम्—'माध्यन्दिनसहिताया. पदपाठेऽतिव्याप्ति., तस्यापौरुषेयत्वस्यानिष्टत्वात्' इति, तदपि तुच्छम्, सर्वेषामपि पदपठाना नित्यत्वाभ्युपगमेन आक्षेपानवकाशात्। एतच्च कर्णेहत्य वेदस्वरूपविमर्शे पर्यालोचनीयम्। यत्तु—"वा इति य इति चकार शाकल्य, उदात्त त्वेवमाख्यातमभविष्यद् असुसमाप्तश्चार्थः' (नि० ६।२८) इति यास्केन 'वनेन वायो न्यधायि····· ' (ऋ० स० १०।२९।१) इति मन्त्रे पठित 'वाय ' इति एक पदं मत्वा व्याख्याय लिखितम्। शाकल्येन वा, य., इति पदविभाग. कृतः, स चायुक्तः, 'य' इति प्रयोगे अधायि इत्याख्यातस्योदात्तत्व स्यात्। 'यद्वृत्तान्नित्यम्' (पा० सू० ८।१।६६) इति यत्पदस्य योगे परस्याख्यातस्यानुदात्तत्व न भवति। अधायीत्याख्यात तु अनुदात्तमेव। तस्माद्यास्क-रीत्या पदपाठः शाकल्यकृतत्वात् पौरुषेय एव' इति, तदपि यत्किञ्चित्, तथात्वे शाकलीसहिताया अपि शाकल्यकृतत्वेन पौरुषेयत्वापत्तें.। यदि तु शाकल्यस्य प्रकाशकत्वेनैव कर्तृत्वोपचार इति न संहिताया. पौरुषेयत्वम्, तर्हि पदपाठेऽपि तथैव वक्तु शक्यत्वात्।

वस्तुतस्तु—यथा स्वामिमतशाखाया महत्त्वबोधनाय 'तदुहैकेऽब्राह्म होता यो विश्ववेदस इति नेदरमिति आत्मानं ब्रवाणीति तदु तथा न ब्रूयाद् मानुर्यं हते यज्ञे कुर्वन्ति। तस्माद्यथैव ऋचा अनूक्तमेवानुब्रूयाद् होतारं विश्ववेद-समिति' (श० १।४।१।३५) इति, यथा ब्राह्मणे होतारं विश्ववेदसमिति पाठस्य प्रशंसार्थं होता यो विश्ववेदस इति पाठान्तरस्य मानुषत्वकथनेन निन्दा कृता, तथैव यास्केन 'वायः' इति पाठयुक्तायाः संहिताया. प्रशंसार्थं 'वा' 'यः' इति भिन्नपाठवत्याः शाकल्यसहिताया निन्दार्थमेव तत्र दूषणमुक्तम्। शाकल्यः स्वसंहितायां 'वा' 'यः' इति चकार। उदात्तं त्वेवमा-

इस बात को पण्डित दीनानाथ शास्त्री सारस्वत ने बड़े विस्तार से सिद्ध किया है। 'सम्प्रदायाविच्छिन्नत्वे सत्यस्मर्यमाणकर्तृत्वम्' इस लक्षण को और उसकी व्याख्या को भी मीमासक श्री ने अशुद्ध रूप से प्रदर्शित किया है। वस्तुतः यह अपौरुषेयता का लक्षण है। अपौरुषेय वाक्य समूह को ही वेद कहते हैं। यह लक्षण भी नवीन नही है। चित्सुखाचार्य के प्रसिद्ध ग्रन्थ चित्सुखी में इस की बहुत पहले चर्चा हो चुकी है।

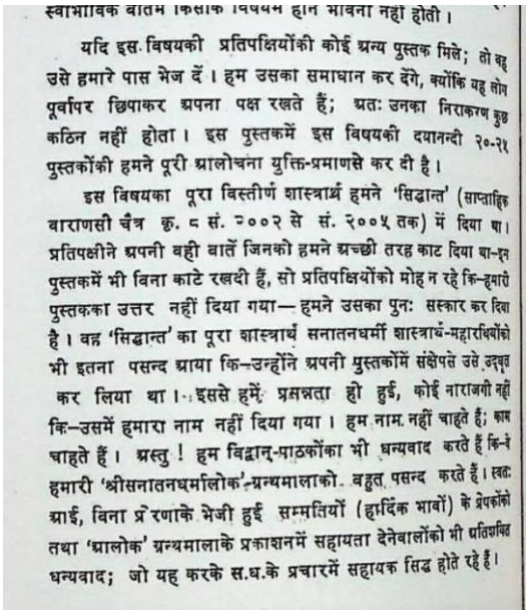
वे फिर कहते हैं कि 'इस लक्षण की माध्यन्दिन संहिता के पदपाठ मे अति व्याप्ति हो जायगी, क्योंकि उस पदपाठ को अपौरुषेय नही माना जाता', किन्तु आपका यह कथन व्यर्थ है, क्योंकि हमारे मत से सभी पदपाठ नित्य माने जाते है, अतः आपका आक्षेप उन पर लग ही नही सकता। इस विषय पर हम 'वेदस्वरूपविमर्श' नामक ग्रंथ मे विस्तार से विचार कर चुके हैं।

7. Pandit Shastri on the Use of His Own Work

Further light is thrown on the matter by Pandit Dinanath Shastri's own words regarding the use of his intellectual labour by others:

> *"हमारा यह शास्त्रार्थ 'सिद्धान्त' पत्र में हो चुका है; जिसे कई विख्यात सनातनधर्मी महोपदेशकों ने उत्तम समझकर हमारा नाम लिये बिना अपनी पुस्तक में संक्षेप से दे दिया था। इसमें हम अपने परिश्रम की सफलता समझते हैं कि उनको भी हमारा परिश्रम पसन्द आया।"*

Shastri Ji himself regarded the unattributed use of his labour by other traditional scholars as a mark of the success of his work, not as theft. Attempts to drive a wedge between him and the circle around Swami Karpatri Ji, or to pose as a posthumous champion of his intellectual property against that circle, find no support in his own recorded attitude.



स्वाभाविक बातमें किसीके विषयमें हीन भावना नहीं होती।

यदि इस विषयकी प्रतिपक्षियोंकी कोई अन्य पुस्तक मिले; तो वह उसे हमारे पास भेज दें। हम उसका समाधान कर देंगे, क्योंकि यह लोग पूर्वापर छिपाकर अपना पक्ष रखते हैं; अतः उनका निराकरण कुछ कठिन नहीं होता। इस पुस्तकमें इस विषयकी दयानन्दी २०-२१ पुस्तकोंकी हमने पूरी आलोचना युक्ति-प्रमाणसे कर दी है।

इस विषयका पूरा विस्तीर्ण शास्त्रार्थ हमने 'सिद्धान्त' (साप्ताहिक वाराणसी चैत्र कृ. ८ सं. २००२ से सं. २००५ तक) में दिया था। प्रतिपक्षीने अपनी वही बातें जिनको हमने अच्छी तरह काट दिया था-इस पुस्तकमें भी बिना काटे रखदी हैं, सो प्रतिपक्षियोंको मोह न रहे कि-हमारे पुस्तकका उत्तर नहीं दिया गया—हमने उसका पुनः सस्कार कर दिया है। वह 'सिद्धान्त' का पूरा शास्त्रार्थ सनातनधर्मी शास्त्रार्थ-महारथियोंको भी इतना पसन्द आया कि-उन्होंने अपनी पुस्तकोंमें संक्षेपसे उसे उद्धृत कर लिया था।...इससे हमें प्रसन्नता ही हुई, कोई नाराजगी नहीं कि-उसमें हमारा नाम नहीं दिया गया। हम नाम नहीं चाहते हैं; काम चाहते हैं। अस्तु! हम विद्वान्-पाठकोंका भी धन्यवाद करते हैं कि-वे हमारी 'श्रीसनातनधर्मालोक' ग्रन्थमालाको बहुत पसन्द करते हैं। स्वतः आई, बिना प्रेरणाके भेजी हुई सम्मतियों (हार्दिक भावों) के प्रेषकोंको तथा 'आलोक' ग्रन्थमालाके प्रकाशनमें सहायता देनेवालोंको भी अतिशय धन्यवाद; जो यह करके स.ध.के प्रचारमें सहायक सिद्ध होते रहे हैं।

8. Conclusion

The pattern is consistent. Evidence of collaboration, guidance, mutual regard, and explicit praise is set aside or minimised. Selective quotation and the withholding of contextual material are employed to sustain a predetermined narrative. When one line of argument is closed, the goalposts are shifted to another.

I harbour no personal enmity toward Kushagra Aniket. The objection is solely to the falsehoods concerning Swami Karpatri Ji that continue to be advanced through articles and posts. Each of these claims will be taken up one by one and exposed as sophisticated casuistry.

Further historical evidence that closes even the remaining avenues of escape is in hand. It will be presented at the appropriate stage.

— Compiled from public exchanges on X (Twitter), November 2026